ओ३म्

‘मनुस्मृति का शुद्ध स्वरूप’

–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

समस्त वैदिक साहित्य में मनुस्मृति का प्रमुख स्थान है। जैसा कि नाम है मनुस्मृति मनु नाम से विख्यात महर्षि मनु की रचना है। यह रचना महाभारत काल से पूर्व की है। यदि महाभारत काल के बाद की होती तो हमें उनका जीवन परिचय कुछ या पूरा पता होता जिस प्रकार विगत 5,000 वर्षों में हुए विद्वानों व महर्षि पाणिनी इसहउ का ज्ञात होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि मनु महाभारत काल व उससे पूर्व ही हुए थे। महर्षि दयानन्द इन्हें सृष्टि के आदि काल में अमैथुनी सृष्टि के बाद ब्रह्माजी की पहली व दूसरी पीढ़ी का ऋषि स्वीकार करते हैं। यह उनके द्वारा रचित मनुस्मृति की विषय वस्तु से सिद्ध होती है। देश का संविधान व आचार संहिता आरम्भ में ही बनाये जाते हैं न कि मध्य में या बाद के वर्षों में। मनुस्मृति भी देश का एक प्रकार से संविधान है व सम्पूर्ण आचार शास्त्र है जो इसका अध्ययन करने पर ज्ञात होता है। **इसलिए इसे मानव धर्म शास्त्र की संज्ञा दी गई है।** महर्षि दयानन्द का वैदिक साहित्य विषयक ज्ञान विगत 5,000 वर्षों में उत्पन्न वेदादि धर्मशास्त्र के पण्डितों व विद्वानों में अद्वितीय है। उनका वेद एवं वैदिक साहित्य का जितना अध्ययन व ज्ञान था उसके आधार पर उनके किसी निर्णय को बिना पुष्ट प्रमाणों के एकतरफा out-right अस्वीकार नहीं किया जा सकता और न सन्देह ही किया जा सकता है। यदि महर्षि दयानन्द को मनु विषयक कोई तथ्य ज्ञात न होता तो वह उसे प्रकट ही न करते और यदि करते तो यह अवश्य कहते कि मनु के सृष्टि के आदि में होने की सम्भावना है, इसके पुख्ता प्रमाण उपलब्ध नहीं है। परन्तु उन्होंने ऐसा नही कहा। **इससे उनके द्वारा निश्चयात्मक रूप से कही बात को सत्य मानना ही होगा जो कि आप्त प्रमाण की कोटि में आती है।**

मनु ने मनुस्मृति का प्रणयन क्यों किया? सृष्टि के आरम्भ में कुछ समय तक किसी विधि या नियमों अथवा दण्ड व्यवस्था की आवश्यकता नहीं थी। कालान्तर में आपस में विवाद होने लगे तो शासन व्यवस्था, न्याय व दण्ड व्यवस्था एवं समाज व्यवस्था को सुव्यवस्थित रूप देने की आवश्यकता पड़ी। उस समय मनु महाराज में पण्डितों व क्षत्रियोचित गुणों का अद्भुत सम्मिश्रण था। **वह ऋषि कोटि के असाधारण विद्वान थे।** तत्कालीन नागरिकों ने उनसे प्रार्थना की होगी कि हमारे परस्पर के विवादों का हल व समाधान कीजिए। उन्होंने वेदों के आधार पर निर्णय किया होगा क्योंकि वेद ज्ञान के अतिरिक्त अन्य ज्ञान व नीति विषयक ग्रन्थ व ज्ञान तो उस समय था नहीं। विवाद वृद्धि पर रहे होंगे तो उन्हें लगा होगा कि इसके लिए एक पूरा आचार, न्याय व दण्ड शास्त्र बनाना होगा जिससे समाज व देश के नागरिक सुव्यवस्थित होकर वेद मत के अनुसार जीवनयापन कर सके। महर्षि मनु वेदों के परम भक्त थे यह उनके द्वारा रचित मनुस्मृति के कुछ श्लोकों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है। **मनु जी से पूर्व इस प्रकार का कोई ग्रन्थ अस्तित्व में नहीं था।** यदि होता तो वह यह ग्रन्थ न बनाते अथवा उसमें ही संशोधन करते। इससे पूर्व यदि कोई ग्रन्थ व ज्ञान था तो वह केवल वेद ही थे। वह ऋषि थे और वेदों के मर्म को अच्छी तरह से जानते थे। उन्हें वेदों का ज्ञान आदि व प्रथम ऋषि ब्रह्माजी से प्राप्त हुआ था। अतः वेदों की सहायता से वेदों के अनुकूल उन्होंने मनुस्मृति ग्रन्थ की रचना की थी। इसका उद्देश्य यह था कि समाज की रचना पर प्रकाश पड़े। स्त्री–पुरूषों के बीच सामाजिक बन्धन व सम्बन्ध किस प्रकार के हों, इसका ज्ञान हो। सभी नागरिकों के कर्तव्य व अधिकार क्या व कैसे हों, क्या बातें अपराध की श्रेणी में आती हैं और कौन सी अपराध से मुक्त हैं, कृषि करने के क्या नियम हों, पशु–पालन की व्यवस्था किस प्रकार की होगी, सन्ध्या व हवन तथा अन्य कर्तव्यों पर भी उन्होंने प्रकाश डालना था, आदि आदि। इस प्रकार से सामाजिक व राजधर्म सम्बन्धी सभी पहलुओं पर उन्होंने सारगर्भित प्रकाश डालते हुए सामाजिक नियमों का प्रणयन किया। यह ऐसा ही था जैसे कि भारत के स्वतन्त्र होने पर एक संविधान सभा के द्वारा इसके अध्यक्ष व सदस्यों ने परस्पर चर्चा करके संविधान की रचना की। यद्यपि प्राचीन काल में संविधान तो चार वेद थे परन्तु वेदों को सरलतम् रूप में मनुस्मृति द्वारा प्रस्तुत किया गया था। यह कुछ ऐसा ही कहा जा सकता है जैसे हमें गाय माता से दुग्ध प्राप्त होता है। उस दुग्ध से गोपालक आवश्यकता के अनुसार दधि, नवनीत, घृत व मट्ठा आदि पदार्थों को बनाते है। **वेद से इसी प्रकार से आवश्यकतानुसार सामाजिक नियमों का संग्रह महर्षि मनु जी ने किया जिसे ही आजकल मनुस्मृति कहा जाता है।**

अब इस मनुस्मृति के अनुसार व्यवस्था को चलाना था। अतः जो इन नियमों व समाज संचालन के प्रावधानों को धारण कर सके ऐसे व्यक्ति की तलाश करनी थी। उस समय के योग्यतम व्यक्ति मनु जी ही थे। इसी लिए तो उनसे ही प्रार्थना की गई थी और उन्होंने ही इसका निर्माण भी किया। अतः उपलब्ध ज्ञान के अनुसार हमारा मानना है कि देश के राजा का पद भी सर्वसम्मति से उन्हें ही प्रजा द्वारा दिया गया था। इस प्रकार से पहली सामाजिक व शासन व्यवस्था भारत में अस्तित्व में आयी। हमारे मत का समर्थन इस बात से होता है कि महर्षि मनु को सर्वप्रथम राजा अर्थात् first law giver कहा जाता है। जयपुर के हाई कोर्ट और फ्रांस के सुप्रीम कोर्ट के बाहर राजर्षि मनु की मूर्ति की स्थापना कर उन्हें सम्मानित किया गया है।

आज हमारे पौराणिकों में जो मनुस्मृति उपलब्ध है उसका अध्ययन करने पर उसमें अनेकानेक बातें ऐसी हैं जिन्हें कोई भी बुद्धिजीवी व विवेकशील मनुष्य स्वीकार नहीं कर सकता। महर्षि दयानन्द के सामने भी यह स्थिति आई। उन्होंने पूरी मनुस्मृति का अध्ययन किया। जो बाते वेदानुकूल थी वह उनको ग्राह्य लगी और जो वेद व मानवता के विपरीत थी, उसका उन्होंने त्याग किया। विचार करने पर मनुस्मृति की वेद विरूद्ध मान्यताओं का कारण उन्हें समझ आया। कारण यह था कि महाभारतकाल के बाद वेदों के ज्ञान का सूर्य अध्ययन व अध्यापन में आई शिथिलता से धूमिल हो गया। अन्धकार में जिस प्रकार से वस्तु का दर्शन उसके शुद्ध स्वरूप में नहीं होता ऐसा ही मध्यकाल में ज्ञान के ह्रास के कारण अन्ध विश्वास, कुरीतियों व पाखण्डों का जन्म हुआ। कुछ अल्पज्ञानी स्वार्थी व साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के भी थे। **मनुस्मृति की वेदों के बाद सर्वोपरि मान्यता थी।** वेद देश के अनेक भागों के लोगों को सस्वर स्मरण व कण्ठाग्र थे। उसमें मिलावट करने का उनका साहस नहीं हुआ। ऐसे लोगों ने अपनी इच्छा व स्वार्थों की पूर्ति के लिए अपने अपने मत के श्लोक बनाकर मनुस्मृति के बीच में डालना आरम्भ कर दिया। हमें लगता है कि कुछ श्लोकों का मूल स्वरूप भी परिवर्तित व विकृत किया गया होगा। **इसका एक कारण यह भी था कि उन दिनों मुद्रण की व्यवस्था तो थी नहीं।** हाथ से ताड़ या भोज पत्रों पर लिखा जाता था। एक प्रति तैयार करने के लिए भी भागीरथ प्रयत्न करना पड़ता था। अतः ऐसे पठित अज्ञानी व अल्पज्ञानी, स्वार्थी, अन्ध विश्वासी एवं साम्प्रदायिक लोग अपनी इच्छानुसार अपनी हस्त–लिखित प्रतियों में अपने आशय व मत विषयक नये श्लोक बनाकर बीच–बीच में जोड़ देते थे। उसके बाद वह ग्रन्थ उन्हीं की मनोवृत्तियों वाले उनके शिष्यों के पास पहुंचता था तो वह भी उसमें स्वेच्छाचार करके कुछ नया जोड़ते थे और संशोधित प्रति तैयार कर लेते थे। फिर उसी प्रक्षिप्त अंशों सहित मनुस्मृति की कथा अज्ञानी व अंधविश्वासी श्रद्धालुओं में करते थे। इस पर किसी को क्या आपत्ति हो सकती थी। हमें लगता है प्रक्षेप करते समय किसी प्रतिलिपि कर्ता ने अपने गुरूओं की आज्ञानुसार अच्छी बातें भी जोड़ी होगीं परन्तु मिथ्या प्रक्षेपों का क्रम मध्यकाल में स्वच्छन्दापूर्वक जारी रहा जिसका प्रमाण परस्पर विरोधी मान्यताओं का यह मनुस्मृति ग्रन्थ बन गया। यह सामान्य बात है कि जब भी कोई विद्वान कोई ग्रन्थ लिखता है तो उसमें विरोधाभास व परस्पर विरोधी मान्यतायें नहीं हुआ करती। पुनरावृत्ति का दोष भी नहीं होता। ऋषि व महर्षि तो साक्षात्कृतधर्मा होते हैं जिन्हें सत्य व असत्य का पारदर्शी ज्ञान होता है। उनके कथन व लेखन में असत्य, सामाजिक असमानता व विषमता व पुनरावृत्ति जैसी बातों का होना असम्भव है। यदि किसी प्राचीन ग्रन्थ में ऐसा पाया जाता है तो वह प्रक्षेपों के कारण होता है। **हमारे पौराणिक बन्धुओं की मनुस्मृति इसी प्रकार की पुस्तक है। महर्षि दयानन्द को यह मनुस्मृति अपने विकृत रूप में मान्य नहीं थी। इसलिए उन्होंने बुद्धि संगत श्लोकों को ग्रहण किया और तर्क, युक्ति आदि प्रमाणों के विरूद्ध श्लोकों का त्याग किया। उनके बाद उनके परम भक्त व अनुयायी लाला दीपचन्द आर्य ने स्वस्थापित 'आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली'' की ओर से प्रक्षेपयुक्त मनुस्मृति पर अनुसंधान कार्य कराया जिसमें आर्य जगत के विद्वत शिरोमणि पं. राजवीर शास्त्री और डा. सुरेन्द्र कुमार की सेवायें ली गईं।** इस अनुसंधान कार्य के सफलतापूर्वक समापन होने पर मनुस्मृति का शुद्ध स्वरूप सामने आया। एक वृहद समीक्षात्मक मनुस्मृति जिसमें शुद्ध व प्रक्षिप्त दोनों प्रकार के श्लोक टिप्पणियों सहित दिए गये हैं और दूसरी पुस्तक विशुद्ध मनुस्मृति जिसमें से प्रक्षिप्त पाये गये श्लोकों को हटा दिया गया है। यही विशुद्ध मनुस्मृति ही ग्राह्य है और इसी का स्वाध्याय करना चाहिये। हम पं. राजवीर शास्त्री जी के शब्दों में मनुस्मृति के महत्व एवं प्रक्षेप के कुछ कारणों को प्रस्तुत करने लोभ संवरण नहीं कर पा रहे हैं जिसे आगामी पंक्तियों में प्रस्तुत करते हैं।

मनुस्मृति के महत्व पर पं. राजवीर शास्त्री लिखते हैं कि **समस्त वैदिक वाडंमय का मूलाधार वेद है** और **समस्त ऋषियों की यह सर्वसम्मत मान्यता है कि वेद का ज्ञान परमेश्वरोक्त होने से स्वतः प्रमाण एवं निर्भ्रान्त है।** इस वेद–ज्ञान का ही अवलम्बन एवं साक्षात्कार करके आप्तपुरूष ऋषि–मुनियों ने साधना तथा तप की प्रचण्डाग्नि में तपकर शुद्धान्तःकरण से वेद के मौलिक सत्य–सिद्धान्तों को समझा और अनृषि लोगों की हितकामना से उसी ज्ञान को

ब्राह्मण, दर्शन, वेदांग, उपनिषद् तथा धर्मशास्त्रादि ग्रन्थों के रूप में सुग्रथित किया। महर्षि मनु का धर्मशास्त्र मनुस्मृति भी उन्हीं उच्चकोटि के ग्रन्थों में से एक है। जिसमें चारो वर्णों, चारों आश्रमों, सोलह संस्कारों तथा सृष्टि–उत्पत्ति के अतिरिक्त राज्य की व्यवस्था, राजा के कर्तव्य, अठारह प्रकार के विवादों एवं सैनिक प्रबन्धन आदि का बहुत सुन्दर सुव्यवस्थित ढंग से वर्णन किया गया है। मनु जी ने यह सब धर्म–व्यवस्था वेद के आधार पर ही कही है। उनकी वेद–ज्ञान के प्रति कितनी अगाध दृढ़ आस्था थी, यह उनके इस ग्रन्थ को पढ़ने से स्पष्ट होता है। मनु ने धर्म–जिज्ञासुओं को स्पष्ट निर्देश दिया है कि धर्म के विषय में वेद ही परम प्रमाण है और धर्म का मूलस्रोत वेद है। मनु का यह धर्मशास्त्र बहुत प्राचीन है, पुनरपि निश्चित समय बताना बहुत कठिन कार्य है। महर्षि दयानन्द ने मनु को सृष्टि के आदि में माना है – 'यह मनुस्मृति जो सृष्टि की आदि में हुई, उसका प्रमाण है।' (सत्यार्थ प्रकाश) **यहां महर्षि का यही भाव प्रतीत होता है कि धार्मिक मर्यादाओं के सर्वप्रथम व्याख्याता मनु ही थे। मनु ने मानव की सर्वांगीण–मर्यादाओं का जैसा सत्य एवं व्यवस्थित रूप से वर्णन किया है, वैसा विश्व के साहित्य में अप्राप्य ही है। मनु की समस्त मान्यतायें सत्य ही नहीं, प्रत्युत देश, काल तथा जाति के बन्धनों से रहित होने से सार्वभौम हैं।** मनु का शासन–विधान कैसा अपूर्व तथा अद्वितीय है, उसकी समता नहीं की जा सकती। **विश्व के समस्त देशों के विधान निर्माताओं ने उसी का आश्रय लेकर विभिन्न विधानों की रचना की है।** मनु का विधान प्रचलित साम्राज्यवाद तथा लोकतान्त्रिक त्रुटिपूर्ण पद्धतियों से शून्य, पक्षपात रहित, सार्वभौम तथा रामराज्य जैसे सुखद शान्तिपूर्ण राज्य के स्वप्न का साकार करने वाला होने से सर्वोत्कृष्ट है। इसी का आश्रय करके सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर महाभारत पर्यन्त अरबों वर्षों तक आर्य लोग अखण्ड चक्रवर्ती शासन समस्त विश्व में करते रहे।

पं. राजवीर शास्त्री जी ने यद्यपि मनुस्मृति में प्रक्षेपों के 9 कारणों पर प्रकाश डाला है परन्तु हम यहां प्रमुख कारण का उन्हीं के शब्दों में उल्लेख कर रहे हैं। वह लिखते हैं कि ऐसे वेदानुकूल तथा मानव–समाज में प्रामाणिक एवं प्रतिष्ठा प्राप्त धर्मशास्त्र की मान्यता को देखकर परवर्त्ती वाममार्ग आदि के स्वार्थी क्षुद्राशय लोगों ने अपनी मिथ्या बातों पर विश्वास कराने के लिये जहां ऋषि–मुनियों के नाम से विभिन्न ग्रन्थों की रचना की, वहां ऋषि–मुनियों के ग्रन्थों में भी प्रक्षेप करने में संकोच नहीं किया। मनुस्मृति से भिन्न अनेक ऐसी स्मृतियों की रचना भी की, जिनका नाम महाभारत तक के प्राचीन साहित्य में कहीं नहीं मिलता। **सामान्य जनता का धीरे–धीरे संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ रहना, एक वर्ग विशेष का ही संस्कृत पठन–पाठन पर पूर्णाधिकार हो जाना और प्रकाशनादि की व्यवस्था न होने से परम्परा से हस्तलिखित ग्रन्थों का ही पठन–पाठन में व्यवहार होने से प्रक्षेपकों को प्रक्षेप करने में विशेष बाधा नही हुई। उन्हें जहां भी अवसर मिला, वहीं पर प्रक्षिप्त श्लोकों का मिश्रण करने में वे प्रयत्नशील दिखायी देते हैं। कहीं पूर्ण श्लोक, कहीं अर्ध श्लोक और कहीं–कहीं तो एक चरण का ही प्रक्षेप श्लोकों में दिखायी देता है। यह प्रक्षेप बहुत ही चतुरता से किया गया है, जिसे सामान्य व्यक्ति तो क्या तत्कालीन विद्वान् भी समझ नहीं सके। धार्मिक परम्पराओं से अनुप्राणित, अन्धभक्त और गुरूडम के कारण श्रद्धा करके भारतीय जनता ने ऐसी काल्पनिक बातों को भी नतमस्तक होकर स्वीकार कर लिया।**

लेख की सीमा का ध्यान रखते हुए उपसंहार में यह बताना भी उचित होगा कि मनुस्मृति में 11 अध्याय हैं। प्रथम अध्याय सृष्टि तथा धर्म की उत्पत्ति पर है, दूसरा संस्कार एवं ब्रहमचर्य आश्रम पर, तीसरा समावर्तन, विवाह, पंच–यज्ञ विधान पर, चौथा गृहस्थान्तर्गत आजीविकाओं और व्रतों के विधानों, पांचवा भक्ष्य–अभक्ष्य, प्रेत–शुद्धि, द्रव्य–शुद्धि व स्त्री धर्म विषय पर, छठा अध्याय वानप्रस्थ व संन्यास धर्म विषय पर, सातवां राजधर्म पर, आठवां राज–धर्मान्तर्गत व्यवहारों वा मुकदमों के निर्णय पर, नवां राजधर्मान्तर्गत व्यवहारों के निर्णय, दशवां चातुर्वर्ण्य धर्मान्तर्गत वैश्य, शूद्र के धर्म तथा चातुर्वण्य–धर्म का तथा ग्यारहवां प्रायश्चित विषय पर है। प्रत्येक व्यक्ति को इस **''विशुद्ध मनुस्मृति''** ग्रन्थ को अवश्य पढ़ना चाहिये जिससे सभी प्रकार की भ्रान्तियां दूर होंगी। यदि हिन्दी भाष्य वा अनुवाद के साथ उपलब्ध विशुद्ध मनुस्मृति के कोई पाठक एक दिन में 15–20 पृष्ठ भी पढ लें, तो मात्र एक महीने से भी कम समय में इसे पूरा पढ़ा जा सकता है। विशुद्ध मनुस्मृति को प्रत्येक व्यक्ति को अवश्य पढ़ना चाहिये, विशेष कर उन लोगों को तो अवश्य पढ़ना चाहिये जो इस ग्रन्थ के आलोचक हैं। इसी के साथ इस लेख को विराम देते हैं।

–मनमोहन कुमार आर्य
पताः 196 चुक्खूवाला–2
देहरादून–248001
फोनः 09412985121